संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

वर्ष : १२८ अंक : १६ २० अप्रैल, २०२३ (गुरुवार) वैशाख कृष्णपक्ष अमावस्या सम्वत् २०८० दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१९६०८५३१२४

मानवता का मानः दयानन्द सरस्वती

-सहदेव समर्पित

उदयपुर में एक दिन दो साधु स्वामीजी से मिले। अनेक विषयों पर वार्त्तालाप के बाद स्वामीजी से बोले कि आप अधिकारी लोगों को ही उपदेश किया करें। जो लोग आपके व्याख्यानों में आते हैं वे सब ही तो अधिकारी नहीं होते! इसका स्वामीजी ने जो उत्तर दिया उसका अभिप्रायः यह था कि धर्म के विषय में अधिकार अनधिकार का प्रश्न उठाना सर्वथा व्यर्थ है। धर्मोपदेश सुनने का मनुष्य मात्र को अधिकार है। आपकी जाति और धर्म के सैंकड़ों और सहस्रों मनुष्य विधर्मी हो रहे हैं और आप अधिकार अनधिकार का पचड़ा लिये बैठे हैं। पहले उन्हें बचाओ, अधिकार अनाधिकार का विचार पीछे होता रहेगा। स्वामीजी का यह उत्तर बहुत महत्त्वपूर्ण और मननीय है। इस अधिकार के प्रश्न ने तो स्त्री-जाति और शूद्रों को सदा के लिये विद्या से वंचित किया और इसी अधिकार की दुहाई देकर धर्म के ठेकेदारों और महन्तों ने अपनी गद्दियाँ स्थापित कर लीं। इसी विचार ने देश को रसातल में पहुंचा दिया। स्वामी दयानन्द तो इन मानसिक दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए ही आए थे इसलिए उनको यह कैसे स्वीकार्य हो सकता था।

भारतीय इतिहास के ज्ञात कालखण्ड में ऐसा कोई व्यक्तित्व दिखाई नहीं देता, जिसके हृदय में मनुष्य जाति और देश के पूर्ण हित की भावना इतनी गहराई तक घर कर रही हो। एक दिन पण्ड्या मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया कि भारत का पूर्णहित और जातीय उन्नति कब होगी?

स्वामीजी के उत्तर का सार यह था कि एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना ऐसा होना कठिन है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि देश के राजा लोग अपने-अपने राज्य में धर्म, भाषा और भाव में एकता स्थापित करें। पं० मोहनलाल ने कहा कि जब आप सबमें एकता चाहते हैं तो मत-मतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं? महाराज ने उत्तर दिया कि धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी और प्रमाद से जाति

के आचार-विचार, रहन-सहन दूषित हो जाते हैं और भाव एक नहीं रहते। आर्य-जाति की यही दशा हुई और यदि इसे संभाला न गया तो यह नष्ट हो जाएगी। धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गए और अब ईसाई हो रहे हैं। यदि जाति को कड़वे उपदेशों के कोड़ों से न जगाया गया और कुरीतियों व कुनीतियों को नष्ट न किया गया तो इसकी मृत्यु में संदेह ही क्या है! मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर ही नहीं रहा हूँ। इसके कारण अनेकों कष्ट सहता हूँ, गालियाँ और ईंट पत्थर खाता हूँ। विष तक भी मुझे दिया जा चुका है, किन्तु जाति और धर्म के लिए मैं सब कुछ सहन करता हूँ।

महर्षि दयानन्द के हृदय में मानवता के प्रति असीम प्रेम था। उन्होंने अलभ्य ब्रह्मानन्द को छोड़कर संसार के उपकार के लिए सांसारिक कष्ट क्लेश में पड़ना स्वीकार किया। देश की दुर्दशा को देखकर उनका हृदय रो उठता था। कानपुर में एक गरीब वृद्धा के पास अपने पुत्र के अन्तिम संस्कार के लिए लकड़ियाँ तक नहीं थीं, उसने शव को गंगा में बहा दिया। स्वामी जी के मुख से निकला- हाय हमारा देश इतना निर्धन हो गया है कि मृतक शरीर के लिए काष्ठ तक भी नहीं मिल सकता। लाला मोहनलाल के अनुसार 'हमने उनको कभी शोकग्रस्त नहीं देखा था, लेकिन इस घटना पर हमने उन्हें आंसू बहाते हुए देखा।'

एक दिन स्वामीजी ने कहा था कि परदेशी राजाओं ने हमारे देश से इतना धन हरण कर लिया है कि अब वह सर्वथा धनहीन हो गया है। परन्तु इस देश की वसुन्धरा इतनी उपजाऊ है कि स्वराज्य पाने के थोड़े ही काल में इस देश को पुनः धनधान्य से पूरित कर देगी। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी लिखते हैं- 'यह आर्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। -- जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।'

स्वामी दयानन्द ने गुरु विरजानन्द दण्डी से आर्ष शिक्षा पाकर अपने थोड़े से कार्यकाल में ही संसार में हलचल मचा दी थी। उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य और अतुल्य व्यक्तित्त्व सारे देश में

क्रमशः पृ. ६.....

वेदामृतम्

अभि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः। ऋ० ९.६४.२१

सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करनेवाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु-प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुण- गान करते हैं, उन्हें आत्मसमर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता है। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम-यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन-कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम-सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि-यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन-पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव सागर से पार हो जाते । परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव-सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं।

ऋषि दयानंद जी के अनुयायी महात्मा हंसराज जी के जन्मदिवस पर महात्मा जी को कोटि कोटि नमन।

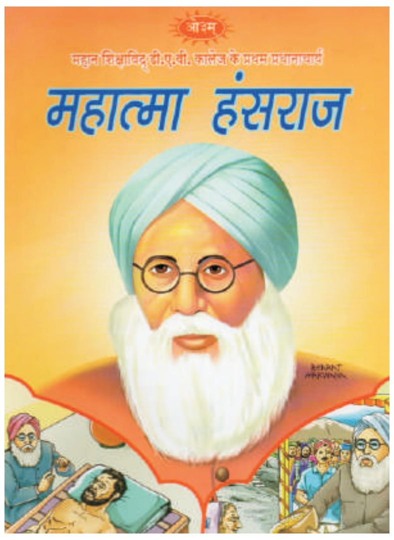

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जिन महापुरुषों ने देश में शिक्षा व समाज-सुधार के क्षेत्र में काम शुरू किया, उनमें महात्मा हंसराजजी का नाम बहुत ऊंचा है। एक ओर जहां वह डी.ए.वी. शिक्षा संस्थाओं के संस्थापक थे, वहां अछूतोद्धार आदि के क्षेत्र में उनका योगदान कम नहीं था। उन्होंने अपना सारा जीवन ही शिक्षा और समाज-सुधार के कार्यों के लिए अर्पित कर दिया और बड़ी-से-बड़ी बाधा उन्हें पथ से डिगा नहीं सकी।

महात्मा हंसराज जी का जन्म १९ अप्रैल १८६४ को होशियारपुर शहर (पंजाब) से दो-तीन मील दूर बसे बजवाड़ा नामक कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम लाला चूनी लाल और माता का नाम गणेश देवी था। उनके माता-पिता बहुत अमीर नहीं थे। उनका स्कूल घर से दूर था। गर्मियों में नंगे पैर से आते समय धूप से तपती हुई रेत से जब उनके पैर जलने लगते, तो वह अपनी तख्ती स्कूल नीचे रख देते और उस पर खड़े होकर अपने पैरों की जलन मिटाते और कुछ देर बाद फिर तपती रेत पर चलने लगते। इस पर भी अपनी श्रेणी में वह सदा प्रथम आते।

हंसराज जी अभी १२ बरस के ही थे कि उनके पिता का देहांत हो गया। तब उनके बड़े भाई लाहौर चले आए और अपने छोटे भाई को भी ले गए।

लाहौर मे एक बार एक दुकान पर गणित की पुस्तक खरीदने गए। दुकानदार ने मजाक में गणित का

क्रमशः पृ. ४.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

निःस्वार्थ प्रेम

"सभी शब्दों के अपने-अपने कुछ अर्थ होते हैं। उन्हीं निश्चित अर्थों में उन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।"

एक शब्द चलता है, स्वार्थ। दूसरा शब्द है, परार्थ। और तीसरा शब्द है, निःस्वार्थ। स्वार्थ का मतलब होता है, स्व अर्थ = अपने लिए। "अर्थात अपने लाभ के लिए जो काम किया जाता है, उसे स्वार्थ कहते हैं।" परार्थ का अर्थ है दूसरे के लिए, "अर्थात दूसरे के लाभ के लिए जो काम किया जाता है, उसे परार्थ कहते हैं।" "और जो काम बिना स्वार्थ के किया जाए उसका नाम है, निःस्वार्थ।" ये इन शब्दों के सामान्य अर्थ हैं। आइए इन पर थोड़ा विस्तृत विचार करें।

"आत्मा स्वभाव से स्वार्थी है। अर्थात अपने लाभ के लिए काम करना उसका स्वभाव है।" क्यों? क्योंकि स्वभाव से उसमें बहुत सी कमियां हैं। उसे बहुत सारी वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। जैसे रोटी कपड़ा मकान मोटर गाड़ी धन संपत्ति पुत्र परिवार सम्मान आदि। और वह मोक्ष को भी प्राप्त करना चाहता है।

इन सब वस्तुओं की आवश्यकता आत्मा को क्यों रहती है? "वास्तव में आत्मा की मूल आवश्यकताएं दो हैं। एक तो वह सब दुखों से छुटकारा पाना चाहता है। और दूसरा, वह पूर्ण सुख को प्राप्त करना चाहता है।" दुख से उसे स्वभाव से ही द्वेष है, इसलिए वह सदा अपने दुखों को दूर करने का प्रयत्न करता रहता है। इसी प्रकार से उसके पास सुख भी नहीं है। "सुख की इच्छा उसे सदा रहती है। अतः वह सुख को भी प्राप्त करना चाहता है। वह भी उच्च स्तर का। पूर्ण आनन्द।" जब तक उसे पूर्ण आनंद की प्राप्ति न हो जाए, तब तक वह काम चलाऊ रूप से, जैसा जितना और जहां भी सुख मिले, उसी को भोगता रहता है। जैसे कि संसार के धन सम्मान रोटी कपड़ा मकान संपत्ति आदि वस्तुओं के माध्यम से।

अब ये दो आत्मा के मुख्य उद्देश्य हैं, दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति। इन्हीं के लिए ही आत्मा का सारा प्रयत्न है। "इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति को स्वार्थ कहते हैं। इस प्रकार से आत्मा जो भी करता है, वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही करता है।"

अब कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि आत्मा दूसरों के लाभ के लिए भी काम करता है। जैसे हलवाई दूसरों के लिए मिठाई बनाता है। दर्जी दूसरों के लिए कपड़े सिलता है। एक विद्वान दूसरों की उन्नति के लिए विद्या पढ़ाता है। "सामान्य रूप से इस का नाम परार्थ है। परन्तु इस सब के पीछे भी उनका स्वार्थ है। इन सब कार्यों को करने से, या तो उन्हें भौतिक सुख सुविधाएं मिलेंगी। या फिर मोक्ष मिलेगा। इस प्रकार से मोटे तौर पर ये कर्म परार्थ दिखते हुए भी, इसके पीछे भी स्वार्थ छिपा है।"

इस विचार से यह पता चला, कि "आत्मा कोई भी काम बिना स्वार्थ के नहीं करता।" फिर भी एक और शब्द का प्रयोग प्रचलित है। वह है निःस्वार्थ। इसका भी प्रयोग व्यवहार में देखा जाता है। "जब आत्मा प्रत्येक कार्य स्वार्थ पूर्ति के लिए करता है, तो निःस्वार्थ तो कुछ हुआ ही नहीं।" फिर भी यदि इस शब्द का प्रयोग चल रहा है, तो इसका कोई न कोई अर्थ तो होना चाहिए। इसका अभिप्राय ऐसा माना जाता है, कि "जब आत्मा सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिए कर्म करता है, तो उसे स्वार्थ नाम से लोग कहते हैं। और जब यह सांसारिक सुख लक्ष्य छोड़कर, मोक्ष प्राप्ति लक्ष्य से दूसरों का उपकार करता है, तो इसे परोपकार अथवा निःस्वार्थ आदि शब्द से कहा जाता है।" दूसरों का उपकार इसलिए करना पड़ता है, क्योंकि इसके बिना ईश्वर, आत्मा को न तो धन सम्मान आदि देता, और न ही मोक्ष देता है। "ईश्वर न्यायकारी है। वह मुफ्त में कुछ नहीं देता। कर्म करने पर ही देता है। इसलिए आत्मा को हलवाई दर्जी मोची नाई या अध्यापक उपदेशक प्रचारक आदि बनकर मजबूरन औरों का कार्य करना पड़ता है।"

"जब आत्मा धन सम्मान भौतिक संपत्ति आदि को लक्ष्य बनाकर दूसरों के कार्य करता है, तो इसे स्वार्थ नाम से कहते हैं। और जब आत्मा मोक्ष प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर दूसरों की सेवा करता है, तो इसी को निःस्वार्थ नाम से कह दिया जाता है।"

जब आत्मा इस प्रकार का निःस्वार्थ भाव से परोपकार आदि कर्म करता है, तो वह अपने मन में दूसरों के हित की भावना रखता है। इसके बिना वह दूसरों का उपकार नहीं कर सकता। यह जो दूसरों के हित की भावना है, इसी को 'प्रेम' कहते हैं।

"अब मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से जब आत्मा दूसरों से प्रेम रखता है, और उनकी सेवा परोपकार आदि कर्म करता है, इसको 'निःस्वार्थ प्रेम' कह देते हैं।" (वास्तव में इसके पीछे भी सूक्ष्म स्वार्थ मोक्ष प्राप्ति का छिपा ही रहता है. इसका कारण ऊपर बताया जा चुका है. क्योंकि जीवात्मा स्वभाव से स्वार्थी है।) "फिर भी यह स्वार्थ, सांसारिक स्वार्थ की तुलना में बहुत उच्च स्तर का है, इस कारण से इसको निःस्वार्थ प्रेम कहते हैं।"

अब संसार में यह भी देखा जाता है, कि लोग अपने गुणों के माध्यम से दूसरों को अपनी और आकर्षित करना चाहते हैं। "यदि कोई किसी को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हो, तो उसका उपाय यही है, कि व्यक्ति निःस्वार्थ प्रेम से दूसरों की सेवा करे। अर्थात लौकिक सुख प्राप्ति का लक्ष्य बनाए बिना ही, वह दूसरों की सेवा करे। दूसरों को आकर्षित करने का असली चुंबक यही है।" "जो व्यक्ति इस निःस्वार्थ प्रेम से दूसरों की सेवा करता है, लोग उसकी ओर वैसे ही आकर्षित होते जाते हैं, 'जैसे लोहा चुंबक की ओर।' आप भी यदि दूसरे लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हों, तो निःस्वार्थ प्रेम भाव से देश धर्म समाज की सेवा करें।"

"परंतु कुछ लोग मूर्खता के कारण झूठ छल कपट अत्याचार शोषण क्रोध, घृणा, अपमान या अन्याय आचरण आदि करके दूसरों को दबाते हैं, अपनी दादागिरी उन पर झाड़ते हैं। और इस प्रकार से वे दूसरों को अपनी और आकर्षित करना तथा अपने आधीन बनाकर रखना चाहते हैं। यह बुद्धिमता नहीं बल्कि मूर्खता है।" ऐसा करने से कोई किसी के आधीन नहीं रहता, और न ही कोई किसी से आकर्षित होता। "डर के मारे भले ही कोई व्यक्ति कुछ दिनों तक, किसी के नीचे दबा रहे, परंतु वह वास्तविक सम्मान और वास्तविक प्रेम नहीं है।" वास्तविक प्रेम निःस्वार्थ भाव से सेवा करके मोक्षानन्द की प्राप्ति है, "आत्मवत् सर्व भूतेषु" के भाव ही सच्ची सेवा है।

–सम्पादक

गतांक से आगे.........

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

लैव्य व्यवस्था की पुस्तक तौ.

(समीक्षक) हम जानते थे कि यहाँ देवी के भोपे और मन्दिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके पुजारियों की पोपलीला इससे सहस्रगुणी बढ़कर है। क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें फिर ईसाइयों के याजकों ने खूब मौज उड़ाई होगी? और अब भी उड़ाते होंगे। भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है? वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता। इसी से यह बाइबल ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके मानने वाले धर्मज्ञ कभी नहीं हो सकते। ऐसे ही सब बातें लैव्य व्यवस्था आदि पुस्तकों में भरी हैं कहाँ तक गिनावें।। ५५।।

गिनती की पुस्तक

५६- सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खींचे हुए मार्ग में खड़ा देखा तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआम ने गदही को लाठी से मारा। तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन बार मारा।।

-तौ० गि० प० २२। आ० २३ २८।।

(समीक्षक) प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आज कल बिशप पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं। क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं? यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं? वा रोगी अथवा अन्य भूगोल में चले गये ? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये ? वा अब ईसाइयों से रुष्ट हो गये? अथवा मर गये? विदित नहीं होता कि क्या हुआ? अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते तो तब भी नहीं थे और न दीखते होंगे। किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं।। ५६।।

५७- सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो ।।

परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिये जीती रक्खो।।

- तौ० गिनती प० ३१। आ० १७।१८।।

(समीक्षक) वाह जी ! मूसा पैगम्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है कि जो स्त्री, बालक, वृद्ध और पशु की हत्या करने से भी अलग न रहे और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था। क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये क्यों मंगवाता वा उनको ऐसी निर्दयी वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता ?।।५७।।

समुएल की दूसरी पुस्तक

५८-और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कह के नातन को पहुंचा।। कि जा और मेरे सेवक दाऊद से कह कि परमेश्वर यों कहता है कि क्या मेरे निवास के लिए तू एक घर बनवायेगा ।। क्योंकि जब से इसराएल के सन्तान को मिस्र से निकाल लाया मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया परन्तु तम्बू में और डेरे में फिरा किया।।

-तौ० समुएल की दूसरी पु० प० ७। आ० ४। ५। ६ ।।

(समीक्षक) अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है और उलहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया, इधर उधर डोलता फिरा, अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं। क्यों ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में लज्जा नहीं आती? परन्तु क्या करें बिचारे फंस ही गये। अब निकलने के लिए बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है।। ५८।।

राजाओं की पुस्तक

५९-और बाबेल के राजा नबुखुदनजर के राज्य के उन्नीसवें बरस के पांचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरूसलम में आया और उसने परमेश्वर का मन्दिर और राजा का भवन और यरूसलम के सारे घर और हर एक बड़े घर को जला दिया।। और कसदियों की सारी सेना ने जो उस निज सेना के अध्यक्ष के साथ थी यरूसलम की भीतों को चारों ओर से ढा दिया।

-तौ० रा० पु० २। प० २५। आ० ८ ९ १०।।

(समीक्षक) क्या किया जाय ? ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था। उसमें आराम करता होगा, परन्तु नबूसर अद्दान ने ईश्वर के घर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न कर सकी। प्रथम तो इनका ईश्वर बड़ी-बड़ी लड़ाइयां मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला तुड़वा बैठा। न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहाँ उड़ गया? यदि यह बात सच्ची हो तो जो जो विजय की बातें प्रथम लिखीं सो-सो सब व्यर्थ हो गई। क्या मिस्र के लड़के लड़कियों के मारने में ही शूरवीर बना था ? अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा करा ली। ऐसी ही हजारों इस पुस्तक में निकम्मी कहानियां भरी हैं।। ५९।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

आततायी को दण्ड देना धर्म

(बाबू अनन्तलाल दानापुर से प्रश्नोत्तर- नवम्बर, १८७९)

जब स्वामी जी दानापुर में थे तो एक दिन स्वर्गीय बाबू अनन्तलाल ने एक गुलाब का फूल तोड़ा। उसे देख कर स्वामी जी ने ललकार कर कहा कि भाई ! तूने बुरा किया। यह फूल कितनी वायु को सुगन्धित करता । तूने इसे तोड़कर इसके नियत कार्य से इसे रोका। इसके पश्चात् जब स्वामी जी भीतर आकर बैठे तो स्वामी जी के हाथ में मक्खी उड़ाने का मोर छल था उक्त बाबू ने कहा कि फूल के तोड़ने में तो आपने पाप बतलाया परन्तु क्या आपके हाथ के मोरछल से मक्खी को कष्ट नहीं होता ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि आततायी के रोकने में तुम्हारे जैसे मनुष्यों ने बाधा डाली जिससे भारत का नाश हो गया। तुम जैसे निर्बल और साहसहीन लोगों से रणभूमि में क्या हो सकता है (लेखराम पृ० ५०१)

हम और हमारी अस्मिता

-बद्रीप्रसाद पंचोली

पश्चिम के दार्शनिक डेकार्टे सन्देहवादी थे। उनके सामने कुछ भी कहा जाता, उनका उत्तर होता था-आई डाउट-मुझे सन्देह है। एक दिन उनके मित्र ने प्रश्न किया- कुछ भी ऐसा है क्या, जिस पर तुमको सन्देह नहीं है? डेकार्ट का उत्तर था-''हाँ है।'' मित्र का पुनः प्रश्न था - 'वह क्या है?' डेकार्ट ने कहा- ''आइएम।'' मित्र ने पुनः पूछ लिया- 'क्यों?' डेकार्ट ने कहा- ''बिकाज आई डाउट।'' सन्देह करने वाला 'मैं' हूँ इसलिए उसके होने में डेकार्ट को कोई सन्देह नहीं था और कभी किसी और को भी सन्देह नहीं हो सकता। भारत में जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य माना गया है - आत्मानं विद्धि- स्वयं को जानो। मैं क्या हूँ? इसे पहचानो। यह संसार तो है- अस्ति पुर मैं की प्रतीति 'अस्मि' से होती है। 'अस्मि' का अर्थ है-हूँ, मैं हूँ। अस्मि का भाव 'अस्मिता' है- अपने होने का भान। मैं हूँ इसकी प्रतीति 'अस्मिता' होती है। आत्मगौरव की प्रतीति भी अस्मिता का अर्थ होता है।

हमारी अस्मिता सनातन भारतीय राष्ट्र है। समय-समय पर ऋषि-मुनियों, कवियों, लेखकों ने अपने ऐसे उद्‌गार व्यक्त किये हैं। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था- 'मैं भारत हूँ।' सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने कहा था- 'मैं हिन्दी हूँ।' यह अस्मिता का प्रकटीकरण है। रामधारीसिंह दिनकर की कविता है-

मेरे नगपति मेरे विशाल
मेरी जननी के हिमकिरीट
मेरी जननी के तुम भाल

इसमें अस्मिता का भाव व्यंजित होता है। अथर्ववेद में मंत्रद्रष्टा अपनी अस्मिता की पहचान धरती के पुत्र के रूप में करता है-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

आम्भृणी सूक्त में वाक् का 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' कथन अस्मिता को संकेतित करता है। 'मैंने मैं शैली अपनाई' कह कर निराला ने अस्मिता को ही प्रकट किया है।

गोस्वामी तुलसीदास का 'स्वान्तः सुखाय' कवि कर्म उनकी अस्मिता को प्रकट करता है। उन्होंने रामकथा अपनी लोकभाषा में लिखी-

नानापुराणनिगभागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिभंजुमातनोति।।

अस्मिता का सम्बन्ध केवल मन-बुद्धि से नहीं होता। वह भाषा, संस्कार, वेषभूषा, खान-पान और अपनों के प्रति आत्मीयता के रूप में प्रकट होती है। भूमि के प्रति अनुराग के रूप में प्रकट होती है। मैथिलीशरण गुप्त ने गाया-

मानव भवन में आर्यगण जिसकी उतारें आरती।
भगवान सारे विश्व में गूँजे हमारी भारती।।

तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की। नीतिकारों ने कहा है-

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
यह भी कहा- हे मातृभूमि!
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।

यह हमारी परम्परागत दृष्टि हमारी अस्मिता को प्रकट करती है। हेमचन्द्राचार्य ने कहा है-

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेकृति मीमांसकाः।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेतिनैयायिकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथे हरिः।।

जिसकी शैव शिव कह कर उपासना करते हैं, जिसको वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं। जैनशासन के अनुयायी जिसे अर्हत् कहकर उपासना करते हैं और मीमांसक जिसे कर्म मानते हैं। बौद्ध जिसे बुद्धनाम से उपास्य मानते हैं और तर्ककुशल नैयायिक जिसे कर्ता मानते हैं, वह त्रिलोकी का नाथ आप सबको वांछित फल प्रदान करे।

यदि उस समय इस्लाम और ईसाई मत भी भारत में होते तो हेमचन्द्राचार्य को यह कहने में भी कोई संकोच नहीं होता कि उस त्रिलोकीनाथ को मुगल मान अल्लाह और ईसाई गोड कहते हैं। पारसियों का अहुरमज्दा (असुर-महत्) और यहूदेव (यहूदियों) का यह भी वही है। इस भारतीय अस्मिता की उद्‌घोषणा के सम्मुख सेक्यूलरों की धर्मविहीनता का कोई अर्थ नहीं है।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य की सर्वधर्म समभाव की उद्‌घोषणा को हमने मार्गदर्शक माना है। भतृहरि का कथन है-

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौवा सुहृदि वा मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैण वा मय समदृशो यान्ति दिवसाः क्वचित् पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः।।

व्यक्तिगत जीवन में समदृष्टि के रूप में अस्मिता को भर्तृहरि ने प्रस्तुत किया है।

'योगः कर्मसु कौशलम्' कह कर श्रीकृष्ण ने कर्मभूमि भारत के संस्कारों का परिचय दिया है। राम ने कहा है- ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'' राम ने ही कहा है- ''रामो द्विर्नाभिभाषते'' - अर्थात् राम दो बार किसी बात को नहीं कहता। जो कहता है उसे करके दिखाता है। उसी राम के लिए तुलसीदास ने कहा- मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी।

हमारी अस्मिता प्रकट होती है तब व्यक्ति उदार बन जाता है, अपने पराये का भेद भूल जाता है और सारे विश्व को कुटुम्ब समझने लगता है-

अयं निजः परो वेति गणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

वेद ने कहा- ''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि समीक्षामहे'' - अर्थात् मित्र की दृष्टि से सबको देखें। देवों को मित्र बनाने की कामना भी व्यक्त की-देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम् । देवता परिश्रम किए बिना मित्र नहीं बनते - न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः । याज्ञवल्क्य ने कहा- अयं तु परमो धर्मः यद् योगेन आत्मदर्शनम्। यह भारतीय अस्मिता को उद्‌घोषित करने वाली दृष्टि है।

'गावो विश्वस्य मातरः' की मान्यता भी हमारी अस्मिता की परिचायक है। हम गंगा और तुलसी को भी माता मानते हैं। हम कामना करते हैं-

भद्र कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

वेद ने कहा- जायेदस्तम्-जाया इत् अस्तम् जाया ही घर है। स्मृति ने दुहराया- गृहिणी गृहमुच्यते, यह भी कहा है-यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

वीर माता और वीर पति का यह चित्रण दर्शनीय है-

वान्ध्यं श्रेष्ठं जगति मनुवे सा न सूते सुतं चेत्
धीरं वीरं रिपुदल शिरः कन्दुकासक्त चित्तम् ।
धिक् स्वरत्रीत्वं गणयति तथा सा न चेत्
वीर पत्नि युद्धे यातुं प्रियजन शिरः कुंकुमैनर्चियेद् वा।।

भारत की यह श्रेष्ठ परम्परा ही भारतीय अस्मिता की उद्‌घोषक है।

वेदों की दृष्टि में धर्म का स्वरूप

हमने ''धर्म'' और संस्कृति शब्दों के मूल अर्थ को नष्ट कर दिया है। हमने सब मतों, मजहबों, सम्प्रदायों, पन्थों, मान्यताओं या दृष्टिकोणों को धर्म मानना शुरू कर दिया है। जबकि धर्म तो केवल कोई एक ही हो सकता है और वह भी वही हो सकता है जो सभी को स्वीकार करने योग्य हो, इसलिए वेद में कहा गया है -

सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववारा।
(यजुर्वेद ७/१४)

वह प्रथम संस्कृति ही विश्व के समस्त मानवों के लिए वरणीय है।

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
(ऋग्वेद १०/६०/१६)

धर्म के वे अंग-सत्य, संयम, सदाचार, न्याय, दया, क्षमा, परोपकार व अहिंसा आदि शाखा-प्रशाखा के रूप में सर्वप्रथम वेदों में ही वर्णित हैं। संस्कृत साहित्य में विलोम शब्द के रूप में दो शब्दों की जोड़ी सुप्रसिद्ध है - नूतन व पुरातन। कोई मत या मजहब किसी अन्य मत या मजहब की अपेक्षा नूतन होता है तो कोई पुरातन वैदिक धर्म सनातन है।

किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ से निरन्तर प्रवाहित होती आ रही वैदिक धर्म की यह अजस्त्र धारा गंगा की तरह गंगोत्री से निकलकर आज तक सर्वजनहिताय तथा सर्वजनसुखाय है। यह वैदिक धर्म सार्वजनीन, सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं अजातशत्रु है जो निर्विकार एवं निर्दोष होने के कारण समस्त विश्व का सर्वथा शोधन करता है। यही धर्म विश्ववरणीया संस्कृति भी कहलाती है। जब धर्म वैदिक न रहकर अन्य किसी मतपरक विशेषणों से जुड़ने लगता है तो उस समय मौलिक धर्म की उत्कृष्टता अपने आप समाप्त होने लगती है तथा वह तथाकथित धर्म, संकीर्ण, भाव वाला होकर अपने अनुयायियों को सच्ची मानवता से दूर भी करता है।

धर्म निरपेक्षता की अनर्गल व्याख्या ने ही कुकुरमुत्तों की तरह जगह जगह पर उग आए आधुनिक समस्त मत-सम्प्रदायों, पन्थों एवं मजहबों को उदारता एवं समझौतावाद के कारण धर्म और संस्कृति का जामा पहना दिया है। जिसका परिणाम वर्तमान में हम देख रहे हैं-सर्वत्र धार्मिक विद्वेष, साम्प्रदायिक कट्टरता, मजहबी उग्रवाद, अधिक स्वायत्तता की मांगें व युद्ध विभीषिका। इस प्रकार का तथाकथित धर्म स्वयं को उत्कृष्ट एवं अन्य को गर्हित, हेय व अधम मानता है। ऐसी बात नहीं है कि वैदिक धर्म से पृथक अपनी सत्ता रखने वाले अन्य मतों व मजहबों में कोई अच्छी बात है ही नहीं अपितु इन सभी मतों में जो करूणा, ममता, उदारता, सहानुभूति, सदाचार, अहिंसा आदि गुण हैं वे प्रशंसनीय हैं। समाजों व राष्ट्रों में देश, काल तथा व्यक्ति की प्रवृत्ति के अनुसार खान-पान, रहन-सहन, लोकाचार व पूजा-पद्धतियों में भिन्नता होना स्वाभाविक है, परन्तु उन से धर्म की भिन्नता कदापि नहीं हो सकती। लेखक-अज्ञात

पृष्ठ १ का शेष......

एक कठिन प्रश्न उन्हें हल करने के लिए दिया और कहा कि ”यदि तुमने यह प्रश्न हल कर दिया तो मै तुम्हें मुफ्त में किताब दे दूंगा।” कहना न होगा कि हंसराज जी को मुफ्त में ही किताब मिली।

सन् १८८० में उन्होंने एंट्रेस-परीक्षा पास की और १८८५ में बी.ए. की। पंजाब-भर में उन्हें द्वितीय स्थान मिला। संस्कृत और इतिहास में उन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त की।

उन दिनों बी.ए. पास करने पर ऊंची-से-ऊंची नौकरी के दरवाजे खुल जाते थे, परिवार वालों को आशा हुई कि अब हमारी गरीबी दूर हो जाएगी। परंतु इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिसने उनकी जीवन-धारा ही बदल दी।

१८७७ में आर्य समाज का प्रचार करते हुए स्वामी दयानंदजी लाहौर पहुंचे और वहां उनकी धूम मच गई। यह दोनों भाई भी उनसे बहुत प्रभावित हुए। ३० अक्तूबर १८८३ को जहर दिए जाने के कारण अजमेर में स्वामीजी का स्वर्गवास हो गया। लाहौर के आर्यसमाजियों ने अगले ही महीने यह तय किया कि उनकी स्मृति में दयानंद एंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) कालेज व स्कूल खोले जाएं, जहां पाश्चात्य विद्या के साथ-साथ पूर्वी ज्ञान और विशेष कर वेदों की शिक्षा दी जा सके।

इस संस्था में वर्तमान प्रणाली के अवगुणों को त्यागकर केवल गुणों को ग्रहण किया जाए। दस्तकारी आदि की शिक्षा भी दी जाए। कालेज खोलने की योजना बन गई और उसके लिए आठ लाख रुपये जमा करने का फैसला किया गया, परंतु केवल दस हजार रुपये ही इकट्ठे हुए और धनाभाव के कारण कालेज व स्कूल शुरू न हो सके। हंसराज जी इस स्थिति को सहन न कर सके। उन्होंने अपना जीवन इस काम के लिए अर्पित करने का निश्चय कर लिया।

एक दिन वह अपने बड़े भाई लाला मूलराज से कहने लगे कि ”यह बहुत दुख की बात है कि पैसे की कमी के कारण दयानंद कालेज शुरू नही हो पा रहा। मैं कालेज चलाने के लिए अपना जीवन अर्पण करना चाहता हूं। मेरी इच्छा है कि बिना एक पैसा लिए अपना जीवन कालेज को दान कर दूं। परंतु यह काम बिना आपकी सहायता के नहीं हो सकता।”

बड़े भाई को अपने छोटे भाई की यह बात बहुत पसंद आई। उन्होंने कहा कि ”तुम बेखटके कालेज की सेवा करो। मैं तुम्हारे और तुम्हारे परिवार के खर्च के लिए आधा वेतन, अर्थात ४० रुपये मासिक देता रहूंगा।” हंसराज जी की मनोकामना पूरी हुई। उन्होंने आर्य समाज, लाहौर, के प्रधान को चिट्ठी लिख दी कि स्कूल खुलने पर वह अवैतनिक मुख्याध्यापक बनने के लिए तैयार हैं। इस पत्र ने आर्य समाज के कार्यकर्ताओं में नई जान फूक दी। एक जून १८८६ को आर्य समाज, लाहौर, के भवन में स्कूल खोल दिया गया। महात्मा हंसराज जी इसके अवैतनिक मुख्याध्यापक नियुक्त हुए।

स्कूल तेजी से प्रगति करने लगा। केवल पांच दिन में ही स्कूल में ३०० विद्यार्थी दाखिल हो गए। दो-तीन साल बाद ही स्कूल का नतीजा भी अन्य स्कूलों के मुकाबले अच्छा आने लगा।

१८८९ मे ही स्कूल बढ़कर कालेज बन गया और महात्माजी ही उसके प्रिंसिपल नियुक्त किए गए। १८९६ मे कालेज मे इंजीनियरिंग क्लास भी शुरू हो गई। महात्माजी कालेज के विध्यार्थी को अंग्रेजी और इतिहास के साथ-साथ धर्म-शिक्षा भी देते थे।

कालेज के प्रिंसिपल होने के साथ-साथ वह होस्टल के प्रधान सुपरिटेंडेंट भी थे, होस्टल में संध्या-हवन के साथ वह विद्यार्थियों के स्वास्थ्य पर भी बहुत बल देते थे। इसलिए कुश्ती सिखाने के लिए एक पहलवान भी रखा गया।

महात्माजी को कालेज के प्रबंध के साथ-साथ उसके लिए चंदा भी इकट्ठा करना पड़ता था। उन्हीं के अथक परिश्रम के कारण स्कूल व कालेज के नए भवन लाखों रुपयों की लागत से बने।

यद्यपि कालेज के लिए महात्माजी ने लाखों रुपये जमा किए, परंतु उनका अपना जीवन बहुत ही सादा था। काफी समय तक वह चार रुपये महीने के किराए वाले छोटे से मकान में रहे। उनके अपने कमरे में सादी-सी दरी बिछी रहती थी, जिसके एक कोने पर महात्माजी बैठते थे। कमरे का कुल फर्नीचर दो डेस्क और एक छोटी-सी तिपाई थी। मेहमानों को भी भूमि पर ही बैठना होता था, क्योंकि कमरे में कोई कुर्सी ही न थी। इसके बगल में उनके आराम का कमरा था, जिसमें एक चारपाई और एक कंबल ही होता था। उनकी पोशाक थी - खादी का कुरता और खादी का पाजामा, और पैरों में देसी जूता। अधिक कपड़े वह न पहनते थे और न ही रखते थे। सर्दियों में कश्मीरी पट्टू का कोट पहन लेते थे।

एक बार साहूकार उनसे मिलने आया। उसका विचार था कि कालेज के प्रिंसिपल है, ठाठ से रहते होंगे। पर वह यह देखकर दंग रह गया कि वह एक मामूली तख्त पर फटा हुआ कंबल ओढ़े बैठे कुछ लिख रहे थे। अगले दिन वह दो कश्मीने के शाल लेकर उनके पास पहुंचा और निवेदन करने लगा कि यह फटा कंबल उतार दीजिए और यह शाल ओढ़ लीजिए। किंतु महात्माजी अपना फटा कंबल छोड़ने को तैयार नहीं हुए। साहूकार के अत्यंत आग्रह पर उन्होंने वे शाल कालेज के कोष में दान कर दिए।

महात्माजी स्वयं ही सेवाभावी न थे। अन्य सेवाभावी व्यक्तियों को भी वह आगे लाते थे। उन्होंने कालिज के आजीवन सदस्यों की योजना शुरू की। ये सदस्य कालेज से नाममात्र का खर्चे लेकर आजीवन कालेज की सेवा करते थे। इन्हीं आजीवन सदस्यों के बल पर देश-भर में डी.ए.वी. कालिजों व स्कूलों का जाल बिछ गया है।

जब कालेज की सेवा करते-करते २५ वर्ष हो गए तो उन्होंने कालिज के प्रिंसिपल-पद से त्यागपत्र दे दिया। उस समय उनकी उम्र केवल ४८ वर्ष की थी और यदि वह चाहते तो और कई वर्षों तक प्रिंसिपल बने रह सकते थे परंतु उन्हें तो समाज-सेवा की धुन थी। जब उन्होंने इस्तीफा दिया तो डी.ए.वी. कालेज पंजाब का सबसे बड़ा कालेज बन चुका था। एम.ए. की कक्षाओं के अतिरिक्त वहा इंजीनियरिंग कक्षा, आयुर्वेद विभाग, उपदेशक विद्यालय, दस्तकारी स्कूल आदि भी खुल चुके थे। संस्कृत शिक्षा का विशेष प्रबंध था। कालेज का अपना भवन था और उसके कोष में आठ लाख से भी अधिक रुपये जमा थे। इस सबका श्रेय महात्मा हंसराजजी को ही था।

एक प्रकार से महात्मा हंसराज ने भारतीय स्कूलों व कालिजों की स्थापना का मार्गदर्शन किया। डी.ए.वी. स्कूल की देखा-देखी ही अन्य भारतीय स्कूल भी खुले।

इस्तीफा देने के बाद १९१२ में वह दयानंद कालेज कमेटी के प्रधान बने। इस समय उन्होंने स्कूल-कालेज में कई सामाजिक सुधार भी लागू किए, उन दिनों बाल-विवाह का बहुत प्रचलन था। उन्होंने १९१५ में डी.ए.वी. स्कूल में विवाहित छात्रों का प्रवेश बंद करा दिया। बाद में एफ.ए. कक्षाओं में भी केवल अविवाहित छात्रों को ही भरती किया जाने लगा।

छूत-अछुत मिटाने में भी महात्मा हंसराजजी ने बहुत काम किया। दयानंद स्कूल व कालेज में सभी वर्णों के छात्र दाखिल हो सकते थे। १९२६ में एक चमार विद्यार्थी जब दयानंद कालिज छात्रावास में दाखिल हुआ तो ब्राह्मण रसोइए ने उसे भोजन कराने से इंकार कर दिया। परंतु महात्माजी ने विद्यार्थियों को समझाया और छात्रावास के ७०० विद्यार्थियों ने रसोइए के विरुद्ध हड़ताल कर दी। अंततः रसोइए को झुकना पड़ा और सब विद्यार्थियों ने चमार विद्यार्थी के साथ मिलकर भोजन किया।

दयानंद कालेज के साथ-साथ महात्माजी आर्य समाज के कार्यों में भी बहुत रुचि लेते थे, उनके परिश्रम के कारण पंजाब, सिंध, बलोचिस्तान आदि में आर्य समाजों का जाल बिछ गया। सामाजिक सुधारों और जनता की सेवा का काम भी चलता रहा। वह केवल कोरे उपदेश नहीं देते थे, वरन उन पर अमल भी करते थे। उन दिनों मोची, धोबी आदि को स्वर्ण हिंदू बहुत नीच मानते थे। इस भावना को दूर करने के लिए उन्होंने अपने चचेरे भाई को लाहौर में जूतों और बूटों की दुकान खुलवा दी।

इसी तरह उनके एक और संबंधी ने कपड़े धोने की एक लान्ड्री खोली। उन दिनों में ये बहुत ही क्रांतिकारी कदम थे। दयानंद इंडस्ट्रियल स्कूल में भी दर्जी, लोहार, बढ़ई और जिल्द बनाने के काम की शिक्षा दी जाने लगी। इस स्कूल के कारण भी उंच-नीच का भेद और छुआछूत काफी कम हो गई।

छुआछूत दूर करने का काम केवल पंजाब तक ही सीमित नहीं रहा। दक्षिण भारत में मलाबार के अछूतों को भी उन्होंने आर्यसमाजी बनाया और वहां के अछूतों को पहली बार सड़कों पर बेरोकटोक चलने की अनुमति दिलाई। कांगड़ा के अछूतों के लिए बावड़ियां और तालाब बनवाए। उनके उद्धार के लिए दयानंद दलित उद्धार मंडल की स्थापना की गई।

महात्माजी ने विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय काम किया। कई कन्या पाठशालाएं खुलवाईं और कट्टरपंथी पंडितों से शास्त्रार्थ भी किए। बाद में तो उन कट्टरपंथियों ने स्वयं भी कन्या पाठशालाएं खोलनी शुरू कर दी।

महात्माजी केवल धार्मिक नेता ही नहीं थे। जब बीकानेर, गढ़वाल, अवध, उड़ीसा और मध्य भारत में भारी अकाल पड़े तो वह तन-मन-धन से अकाल पीड़ितों की सेवा में जुट गए। कई जगह वह स्वयं गए और कई जगह अपने सहयोगियों को भेजा। इसी प्रकार कांगड़ा, क्वेटा और बिहार के भूकंप-पीड़ितों के लिए उन्होंने लाखों रुपये एकत्र करके भेजे। वह गरीबी को देश के लिए सबसे बड़ा अभिशाप मानते थे। उनकी राय थी कि एक भी पाई जो खर्ची जाए, देश के आदमियों के पालन में ही लगे। स्वदेशी का व्रत भी इसमें सहायक हो सकता है।

ब्याह-शादियों के अवसरों पर भी रुपया बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए। बाल-विवाह को भी वह देश के पतन का कारण मानते थे। देश की अन्य बुराइयों में वह जात-पांत व अछूतों का प्रश्न, विधवाओं की दुर्दशा और नारी शिक्षा के अभाव को बड़ा मानते थे।

महात्मा हंसराजजी ठोस, परंतु मूक कार्यकर्ता थे आत्म-प्रचार से वह कोसों दूर भागते थे। लोगों ने उन पर राजनीति में शामिल होने के लिए बहुत जोर भी डाला। परंतु उनका एक ही जवाब था, मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं। रचनात्मक कार्य में लगा हूं और सदा इसी में लगा रहूंगा। और अपने जीवन के ७४ वर्षों में से ५८ वर्ष रचनात्मक कार्य में लगाने के बाद १५ नवंबर १९३८ को उन्होंने यह नश्वर देह त्याग दी। परंतु आज भी देश में डी.ए.वी. के अन्तर्गत ९१६ शिक्षण संस्थाएं है जिनमें ४६१ हाई स्कूल और उनमें पढ़ने वाले २० लाख से अधिक छात्र-छात्राएं उनकी याद को ताजा बनाए है।

साभार-आर्य परिवार संस्था,
कोटा, राजस्थान

महर्षि दयानन्द सरस्वती पर्यावरण विद् के रूप में
कोरोना में हितकारी भैषज्य दीप
एयरप्योरिफायर एवं रूम फ्रेशनर के रूप में राष्ट्र क्रांति

प्रवीण सत्येन्द्र विद्यालंकार

मैं राष्ट्र क्रांति की मशाल लिए इस कोरोना काल में-

''दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरुरुमतृहम।

अलगण्डूनर्त्सर्वान्छलुनानिक्रमीन्व चसा जम्भयामसि - के माध्यम से परमपिता परमात्मा से दृश्य तथा अदृश्य कष्टदायी महामारी कोरोना को नष्ट करने के उपायों की प्रार्थना करती हूँ।

कोरोना काल में प्यारे परमपिता परमात्मा की प्रेरणा से मैंने दीपक पर एक प्रयोग किया जिसका नाम भैषज्य दीप रखा है। हालाकि इस समाज में दीपकों के बारे में कई भ्रान्तियां फैला रखा है जिसके बार में फिर कभी चर्चा करूंगी। मैंने इस दीपक भैषज्य का नाम शतपथ एवं गोपथ नामक ग्रंथ से लिया है। जिसमें भैषज्य यज्ञ का अर्थात व्याधियों यानि रोगों को दूर करने सम्बन्धित यज्ञ का विधान है इस दीपक के लिए २५ ग्राम गुग्गुल ५० ग्राम गिलोय चुर्ण, ५० ग्राम हवन सामाग्री ०८ छोटे टूकड़े कपूर, ०४ बड़ी इलायची के दाने, काबूली चना बराबर दालचीनी तथा एक छोटा चम्मच नब जायफल । गुग्गुल, कपूर, इलायची, दालचीनी और जायफल इन पांचों को खरल में कूच कर चूर्ण बना ले, फिर सभी सामाग्रियों का मिश्रण बनाकर इसको डिब्बे में रख दे प्रातः या सांयकाल जब भी दीपक जलाना हो तो अपने घरों में जलायें, इस भैषज्य दीप को अपने दिनचर्या में अवश्य सम्मिलित करें। दीपक में सबसे पहले गोल बाती बनाकर रखें फिर दो चुटकी उपर्युक्त मिश्रण को डालें पुनः दो चम्मच गाय का घी डाले उसके उपरान्त दीपक प्रज्ज्वलित करें दीपक में सामाग्रियों का क्रम यही रखे क्योंकि यदि आप पहले सामाग्री डाल कर फिर बाती रखते हैं तो सामाग्रियां अच्छी तरह नहीं जलेंगी। सामान्य दीपक दो चम्मच घी के साथ यदि जलाते है तो अधिकतम १० से १५ मिनट तक ही जलेगा। किन्तु इस भैषज्य दीप को प्रज्ज्वलित करने के उपरान्त आप देखेंगे इसकी लौ कितनी उच्चता, कितनी तीव्रता के साथ लगभग आधे घण्टे तक प्रज्ज्वलित होती है इतना ही नहीं आप जिस कमरे में जलायेंगे उसके आस-पास के कमरे भी सुगन्धित होगे और सुगन्ध इतनी पावन और मधुर प्रतीत होती है कि इस सम्पूर्ण कमरा ही आपको सातविक ऊर्जा प्रदान करने लगता है और इतना ही नहीं मच्छर एवं मक्खी भी न के बराबर रह जाते हैं, यह इस प्रयोग का बहुत बड़ा लाभ है। मैंने प्रयोग करने के उपरान्त निरन्तर चार माह से इस भैषज्य दीप को प्रज्ज्वलित कर रही हूँ एवं कुछ लोगों को भी इसका सार्थक प्रयोग भी कराया है।

अतः इसका मानसिक एवं शारीरिक लाभ की आइये बात करते हैं। इस दीप को अपने आँखों के बराबर रख बिना पलक झपकायें जब तक कर सकते हैं निरन्तर ओ३म को मानसिक जप करते हुए लम्बी श्वास लें छोड़ें बिना पलक झपकाये किसी दर्शाय को टकटकी लगाकर देखा ध्यान विधि में त्राटक कहा जाता है। इस प्रकार से दीप को देखने से एकाग्रता आती है एवं स्मरण शक्ति तीव्र होती है। बच्चों को त्राटक का अभ्यास अवश्य कराना चाहिए जब इस पावन सुगन्धित दीप के समक्ष त्राटक करेंगे तो मानसिक शान्ति एवं एक विशिष्ट आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस आनन्द को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते तो बना लीजिये इस दीप को अपना दिनचर्या अंग और फिर अपने अनुभव को बताइये।

जैसा कि इस भैषज्य दीप की उपर्युक्त भाग में मानसिक लाभ की चर्चा हो चुकी हैं अब इसके शारीरिक लाभ को आप सबसे साझा करती हूँ तो यह भैषज्य दीप अनिद्रा, सामान्य सिर दर्द, श्वास फेफड़ों एवं गले की समस्याओं में लाभ करता है। अर्थात इस दीप के सान्निध्य ध्यान एवं प्राणायाम से श्वसन तंत्र दृढ़ यानी कि मजबूत होता है। क्योंकि मुख्यतः यह हमारे आस-पास की वायु को पर्णतः शब्द्ध कर देता है। इस लिए मैंने इसे एक 'प्योरीफायर' एवं 'रूम फ्रेशनर' का नाम दिया हैं, अतः इसका मानसिक एवं शारीरिक लाभ की आइये बात करते हैं। इस दीप को अपने आँखों के बराबर रख बिना पलक झपकायें जब तक कर सकते हैं निरन्तर ओ३म् को मानसिक जप करते हुए लम्बी श्वास लें छोड़ें बिना पलक झपकाये किसी दर्शाय को टकटकी लगाकर देखा ध्यान विधि में त्राटक कहा जाता है। इस प्रकार से दीप को देखने से एकाग्रता आती है एवं स्मरण शक्ति तीव्र होती है। बच्चों को त्राटक का अभ्यास अवश्य कराना चाहिए जब इस पावन सुगन्धित दीप के समक्ष त्राटक करेंगे तो मानसिक शान्ति एवं एक विशिष्ट आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है। इस आनन्द को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते तो बना लीजिये इस दीप को अपना दिनचर्या अंग और फिर अपने अनुभव को बताइये।

जैसा कि इस भैषज्य दीप की उपर्युक्त भाग में मानसिक लाभ की चर्चा हो चुकी हैं अब इसके शारीरिक लाभ को आप सबसे साझा करती हूँ तो यह भैषज्य दीप अनिद्रा सामान्य सिर दर्द, श्वास फेफड़ों एवं गले की समस्याओं में लाभ करता है। अर्थात् इस दीप के सान्निध्य में ध्यान एवं प्राणायाम से श्वसन तंत्र इृढ़ यानी कि मजबूत होता है। क्योंकि मुख्यतः यह हमारे आस-पास की वायु को पूर्णतः शुद्ध कर देता है। इस लिए मैंने इसे एक 'प्योरीफायर' एवं 'रूम फ्रेशनर का नाम दिया हैं, ऐसा इस लिए क्योंकि...**गौ धृत-आयुर्वेद** में सुश्रुतग्रंथ के अनुसार गाय के धृत को अमृत तुल्य, गुणकारी स्मरण शक्ति, बुद्धि, ओंच आदि अनेक गुणों वाला बताया हैं। रासायनिक विज्ञान की भाषा में कहे तो गौ घृत उच्चतम कार्बाक्सिलिक अम्लों का मिश्रित ट्राइग्लिसराइड है। इसमें संत्रप्तृप्टि एवं संत्रप्तृप्टि अम्ल जैसे ओलीक, पामिटिक एवं मिरिस्टिक आदि होते हैं। इतना ही नहीं गौ घृत स्वर्ण मात्रा विटामिन ए, डी कैल्शियम जैसे पौष्टिक तत्वों के साथ-साथ एंटी आक्सीडेण्ट भी होता है। इन गुणों के कारण गौ घृत त्रिदोषनाशक यानी कि कफ, पित्त, वात आदि को नष्ट करने वाला एवं कीटाणुनाशक भी हो जाता है।

कपूर (कर्पूर)-

दूसरा मेरा प्रिय पदार्थ कपूर जिसका उपयोग मैंने त्वचा सहित अन्य उपयोगों में सालों से किया हैं सुश्रुत में कैम्फर यानि कपूर (कर्पूर) को शीतल हलका एवं सुगन्धित आदि माना है। भावप्रकाश के अनुसार यह एक कीटनाशक एवं दुर्गन्धनाशक पदार्थ है। कैम्फर में युनिनॉल, पाइनीन, सीनिआल आदि तत्व होने के कारण श्वसन सम्बन्धित समस्याओं को दूर एवं विषनाशक होता है। वस्तुतः कपूर एक सौरभिक पदार्थ भी है। सामान्य अवस्था में कपूर को सूँघने मात्र से ही सर्दी, जुकाम एवं फेंफड़ सम्बन्धी रोगों में लाभ होता है। रासायनिक विज्ञान में कैम्फर यानी कि कपूर वाश्पशील पदार्थ के कारण ज्वलनशील व तीव्र गन्ध वाला होता है। सबसे महत्वपूर्ण कर्पूर अत्यन्त उत्तम एंटी-आक्सीडेण्ट होता है। आयुर्वेद की बात करें तो कपूर एक उतेजक के रूप में कार्य करता है, जो शरीर के नर्वस सस्टम यानी तंत्रिका तंत्र सम्बन्धी रोगों में सुधार करने की क्षमता रखता हैं व एंटीसेप्टिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीमाइक्रोबियल होता है।

बड़ी इलायची-

बड़ी इलायची हमारे रेस्परेटरी सिस्टम अर्थात् श्वसन तंत्र को स्वस्थ रखता है। अस्थमा रोगों एवं फेफड़ो के संकुचन जैसी समस्याओं को दूर करता है। सर्दी, खाँसी में शहद के साथ चाटने या चाय में डाल कर पीने से काफी आराम मिलता है। डाइयूरेटिक की तरह काम करता हैं जो यूरीनेशन की प्रक्रिया को नियंत्रित करने में भी उपयोगी है। यह एंटी-आक्सीडेण्ट विटामिन सी आदि गुणों से भरपूर होने के कारण शरीर से विषैले पदार्थों को बाहर निकाल देता है। यह एंटी-कैंसर, Immunofuchrace यानी कि प्रतिरक्षा क्षमता भी बढ़ाता है।

गुग्गुल-

जिसमें विटामिन, एंटी-आक्सीडेण्ट जैसे पूर्ण जैसे घटक होने के कारण अनेक रोगों में उपयोगी हैं औषधियों में गुग्गुल का अभिन्न स्थान है। यह आँख, कान, गैस, अम्ल, पित्त तथा अन्य उदर रोगों में जैसे फिस्टुला, बवासीर, अल्सर आदि रोगों में उपयोगी है।

जायफल-

इसमें पायी जाने वाले केमिकल कम्पाउन्ड क्र,निन लीवर डिजीज को दूर करने में कारगर हैं। जायफल में एंटी डिप्रेसेंट एक्टीविटी होती है। जो अवसाद की स्थिति को दूर करने में लाभप्रद है। जायफल ब्रिन-हेल्थ, अनिद्रा, शरीर दर्द आदि रोगों को दूर करने में अत्यन्त सहायक है। यह एंटी शरीर के नवस सस्टम याना तात्रका तंत्र सम्बन्धी रागा में सुधार करन का क्षमता रखता ह व एंटीसेप्टिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीमाइक्रोबियल होता है।

गिलोय-

जिसे बर्बरीन नामक ऐल्केलाईड होने के कारण ज्वर दाह तथा खाँसी, कीटनाशक व विषनाशक है।

हवन सामाग्री-

जो पर्यावरण के शुद्ध करता है यह सर्वविदित है।

अन्ततः कहना चाहूँगी- इन सभी पदार्थों के उपयोग के साथ भैषज्य दीप को जलाने पर सेरोटोनिन, डोपामिन, और हिप्पोकैम्पस (जो हमारे मस्तिष्क का ही एक भाग है) में नोरेपिनफीन का स्तर उच्च सीमा तक बढ़ता है जिससे हममे एकाग्रता, मानसिक शान्ति आती हैं एवं श्वसन तंत्र दृढ़ होता है।

कुछ लोगों को यह शंका हो सकती है कि इन पदार्थों को दीपक में जलाने से कैसे लाभ हो सकता है, तो इस शंका का समाधान मैंने यजुर्वेद के छठवें अध्याय के सोलहवें मंत्र से लिया हैं कि ''स्वाहा कृते ऽ उर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ।'' अर्थात् यज्ञ में स्वाहापूर्वक आहूति देने से वायु ऊपर आकाश में जाती है और हलकी होकर सम्पूर्ण वायुमण्डल को शुद्ध कर देती है। इन सामाग्रियों के साथ दीपक प्रज्ज्वलन भी एक रासायनिक प्रक्रिया है, जो ग्राह्म के गैसीय व्यापनशीलता अर्थात् Lawof Diffusion of Gasses का भी आधार है। यानी कि दीपक के जलने के साथ उसकी सामाग्रियां जल कर हलकी होती है और वायुमण्डल में मिलकर वायु को शुद्ध कर देती है। अन्ततः यह कहना तर्कसंगत होगा कि पूर्णतः भ्मतइंस अर्थात् आेषधियुक्त Room Freshener व Air Purifier वंदे मातरम्। सर्वे भवन्तु सुखिनः।

पृष्ठ....१ का शेष

चर्चित हो गया। उनका आर्ष विद्या और वेदों के प्रति आग्रह, अनार्ष मान्यताओं का प्रबल खण्डन देश की उन्नति का आधार था। मत मतान्तरों को वे देश की उन्नति में बाधा मानते थे। उनकी मान्यता थी कि मत-मतान्तरों के झगड़ों ने देश को दुःख सागर में डुबो दिया है। वे चाहते थे कि लोग सब मतों की समान सत्य मान्यताओं का ग्रहण और असमान असत्य मान्यताओं का परित्याग करके सच्ची एकता स्थापित करें। उन्होंने लिखा- 'मनुष्य का आत्मा सत्य असत्य का जानने वाला होता है तो भी अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य पर झुका जाता है।' इसीलिए उन्होंने सबसे बड़ा प्रहार उस समय समाज में प्रचलित अविद्या पर किया। स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि मेरी मान्यता वही है जो तीन काल में सबको एक समान मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना या मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्रायः नहीं है।

मानव-जाति को अविद्या के जाल से छुड़ाने और सत्य-विद्या का प्रचार करने के लिए उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़े। यहाँ तक कि अनेक बार प्राणों का संकट भी उपस्थित हुआ। परन्तु वे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुए। उन्होंने जैसा कहा और लिखा वैसा किया भी। 'मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।'

स्वामीजी के जीवन में हम देखते हैं कि उन्हें किसी भी प्रकार का, यहाँ तक कि मृत्यु तक का भी भय नहीं था। वे सत्य के लिये किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते थे।

लाहौर में स्वामीजी महाराज दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के बाग में ठहरे। ब्रह्मसमाज के लोगों ने चन्दा करके उनके व्यय का कार्य संभाला था। वे सोचते थे कि स्वामीजी ब्रह्मसमाजी हो जाएँगे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि ये तो ब्रह्मसमाज के दोष बता रहे हैं तो उन्होंने व्यय देना बंद कर दिया। जब स्वामीजी ने कहा कि जाति जन्म से नहीं, कर्म से वर्ण होता है और सबको वेद पढ़ने का अधिकार है तो पौराणिकों ने उन्हें ईसाईयों का एजेन्ट बताना शुरु कर दिया। इतना ही नहीं उन्होंने दीवान रतनचन्द दाढ़ीवाले के पुत्र दीवान भगवानदास को बहका दिया कि ऐसे नास्तिक को अपने बाग में ठहराने से आपको पाप लगेगा। उन्होंने उनकी बातों में आकर स्वामीजी को बाग से जाने को कह दिया। स्वामीजी तुरन्त बाग से निकल पड़े। इस पर एक मुसलमान सज्जन खान बहादुर डॉक्टर रहीम खां ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कोठी महाराज के लिए दे दी।

एक दिन पं० मनफूल ने कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो हिन्दू भी आप से नाराज नहीं होंगे और महाराज जम्मू कशमीर भी आपसे प्रसन्न हो जाएँगे। स्वामीजी ने कहा कि मैं महाराजा जम्मू कशमीर को प्रसन्न करूँ अथवा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूँ जो वेदों में अंकित है।

११ मार्च सन् १८७८-- लाहौर में नवाब रजा अली खां के बगीचे में मुसलमान मत के बारे में व्याख्यान दिया। नवाब साहब पास ही टहल रहे थे और व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर किसी ने उनसे कहा- महाराज आपको न कोई हिन्दू ठहरने को स्थान देता है, न मुसलमान, नवाब साहब ने कृपा करके आपको यह स्थान दिया है, यहाँ भी आपने इस्लाम का खण्डन किया, ऐसा न हो कि नवाब साहब आपसे अप्रसन्न हो जाएँ। स्वामीजी ने कहा कि मैं यहाँ किसी मत की प्रशंसा करने नहीं आया। मैं तो केवल वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूँ। मैं जानबूझकर नवाब साहब को वैदिक धर्म के गुण बतला रहा था। मुझे परमात्मा से भिन्न अन्य किसी का भय नहीं है।

एक दिन बरेली में स्वामीजी के व्याख्यान में कलक्टर, कमीश्नर, पादरी स्कॉट और कुछ अन्य अंग्रेज उपस्थित थे। स्वामीजी पुराणों के दोषों का वर्णन कर रहे थे -- कि ये लोग द्रोपदी, तारा, मन्दोदरी आदि को कुंवारी कहते हैं, द्रौपदी के पांच पति बतलाते हैं, फिर भी उसे कुमारी कहते हैं। इस पर सभी लोगों के साथ अंग्रेज भी हंस रहे थे। स्वामीजी ने देखा कि उनकी हंसी अवज्ञा और ग्लानिसूचक है। अब व्याख्यान का विषय बदल गया।- यह हुई पुराणियों की लीला! अब किरानियों की सुनो! - ये कुमारी के पेट से पुत्र होना बतलाते हैं और दोष सर्वज्ञ शुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं और ऐसा घोर पाप कहते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते। अब अंग्रेजों की हंसी क्रोध में परिवर्त्तित हो गई। कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे तमतमा उठे। स्वामीजी ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की। कमिश्नर ने अगले दिन प्रातः काल लक्ष्मीनारायण खजांची को अपने बंगले पर बुलाकर कहा कि अपने पण्डित से कह दो कि बहुत सख्ती से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, हम वाद विवाद में सख्ती से नहीं घबराते। परन्तु यदि अशिक्षित हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो गए तो तुम्हारे पण्डितजी के व्याख्यान बंद हो जाएँगे। लाला लक्ष्मीनारायण स्वामीजी को यह बात कैसे कहें, उनका साहस नहीं हो रहा था। बड़ी कठिनता से उन्होंने एक नास्तिक को स्वामीजी के सामने यह बात कहने के लिए तैयार किया। वह भी घबरा गया। वह स्वामीजी को केवल इतना ही कह सका कि खजांची जी आपको कुछ कहना चाहते हैं। खजांची की दशा बहुत खराब थी। उनके मुंह से शब्द नहीं निकलता था। कुछ प्रतीक्षा करने के बाद स्वामीजी ने कहा- मेरा अमूल्य समय क्यों नष्ट करते हो, जो कुछ कहना हो शीघ्रता से कहो। उन्होंने अटक-अटक कर बड़ी कठिनाई से कहा- महाराज यदि सख्ती न की जाए तो क्या हानि है! इससे प्रभाव भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेजों को अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं है। यह सुनकर महाराज हंस पड़े और बोले- अरे बात क्या थी, जिसके लिए इतना गिड़गिड़ाया और हमारा समय नष्ट किया। साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित सख्त बोलता है, व्याख्यान बंद हो जाएँगे, यह होगा, वह होगा! अरे भाई! मैं कोई हव्वा तो नहीं कि तुझे खा लूंगा। उसने तुझ से कहा तू सीधा मुझसे कह देता।

उस दिन व्याख्यान आत्मा के स्वरूप पर था। प्रसंगवश स्वामीजी ने सत्य के बल के विषय में कहना प्रारम्भ किया। पादरी स्कॉट को छोड़कर पिछले दिन वाले सब अंग्रेज उपस्थित थे। लोग तन्मय होकर व्याख्यान सुन रहे थे। स्वामीजी ने कुछ देर तक सत्य के महत्त्व का वर्णन करके कहना प्रारम्भ किया- लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। फिर उन्होंने एक उपनिषद् का वाक्य पढ़ा, जिसका आशय था कि आत्मा को कोई हथियार नहीं काट सकता, न उसे आग जला सकती है-- फिर गरज कर बोले कि यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट करदे-- और चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए कहा- परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता तब तक मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं।

रुड़की में सफरमैना की पल्टन का एक मजहबी सिख भी स्वामीजी के उपदेश सुनने के लिए आता था। एक दिन वह सफेद वस्त्र पहने हुए बड़े चाव से स्वामीजी का व्याख्यान सुन रहा था। इतने में छावनी का पोस्टमैन स्वामीजी की डाक लेकर आया। वह मुसलमान था और उस सिख को पहचानता था। उसे देखकर वह आग बबूला हो गया। बोला- अरे मनहूस नापाक! तू इतने मशहूर और बड़े व्यक्ति की सभा में इस बेअदबी से आ बैठा और अपनी जात तक नहीं बताई। यह सुनकर वह लज्जित हुआ और अलग जा बैठा। पोस्टमैन उसे वहाँ से भी खदेड़ना चाहता था। परन्तु परम कारुणिक दयानन्द को यह कैसे सहन हो सकता था। उन्होंने अत्यंत कोमल शब्दों में पोस्टमैन को कहा- उसके सुनने में कोई हानि नहीं है, उसको कुछ न कहना चाहिए। उस मनुष्य की आंखों में आंसू आ गए, हाथ जोड़कर बोला- मैंने किसी मनुष्य की कोई हानि नहीं की, मैं सबसे पीछे जूतियों की जगह अलग बैठा हूँ। स्वामीजी ने पोस्टमैन को कहा-तुम्हें ऐसा कठोर व्यवहार न करना चाहिए, परमेश्वर की सृष्टि में सब समान हैं और उस मनुष्य से कहा कि तुम प्रतिदिन उपदेश सुनने आया करो। मुसलमानों के लिए तुम चाहे कैसे भी हो, परन्तु यहाँ तुम्हें कोई घृणा की –ष्टि से नहीं देखता। वह प्रतिदिन उपदेश सुनने आता रहा।

कानुपर में बाजार की नाप हो रही थी। बीच में एक मढ़िया थी, जिसमें लोग धूप दीप आदि किया करते थे। बाबू मदनमोहन ने स्वामीजी से कहा कि स्कॉट साहब आप को बहुत मानते हैं, उनसे कहकर मढ़िया को हटवा दीजिये। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरा काम लोगों के मनोमन्दिरों से मूर्त्तियों को निकालना है, ईट पत्थरों के मन्दिरों को तोड़ना फोड़ना मेरा काम नहीं है।

बिना किसी पक्षपात के प्राणिमात्र की उन्नति करने में तत्पर ऐसा युगपुरुष इतिहास में दुर्लभ ही है। जहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकार के आडम्बरों में फंसे मनुष्य समाज को सच्चा ईश्वरीय मार्ग दिखाया, वहीं भारतवर्ष के खोए हुए गौरव और आत्मसम्मान को जगा दिया। देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले अधिकांश देशभक्त उनके ही अनुयायी थे। वेदों के वास्तविक अर्थों का प्रचार, स्त्री शिक्षा, मानव एकता, जातिगत भेदभाव निवारण, राष्ट्रभाषा, पर्यावरण संरक्षण और गौ आदि उपकारी और निर्दोष पशुओं की रक्षा के लिए किये गए उनके उद्घोष की प्रतिध्वनि दिग्दिगन्त में सुनाई देती है। इन कार्यों के लिए जिस आत्मिक और शारीरिक बल की आवश्यकता होती है उसका भी उन्होंने अनुपम संग्रह किया था। उनका व्यक्तित्त्व भव्य और आकर्षक था। उनके जीवन में कई ऐसे प्रसंग आते हैं कि उनको हानि पहुंचाने आए दुष्टों के समूह के समूह उनकी हुंकार मात्र से भागने को विवश हो गए। उनका ईश्वर विश्वास अतुल्य था। बड़े से बड़ा खतरा होने पर भी रक्षक बाडीगार्ड नहीं रखते थे। कोई भी लालच उन्हें उनके कर्त्तव्य से नहीं डिगा सकता था। उदयपुर में महाराणा ने अत्यंत विनम्रता से निवेदन किया कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन छोड़ दें। आप जानते हैं कि यह राज्य एकलिंग महादेव के अधीन है। आप एकलिंग के मन्दिर में महन्त बन जाएँ। कई लाख रुपये पर आपका अधिकार हो जाएगा। इस पर स्वामीजी ने कड़क कर कहा- आप लोभ देकर मुझसे सर्वशक्तिमान परमेश्वर की आज्ञा भंग कराना चाहते हैं। यह छोटा सा राज्य और उसके मन्दिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूँ, मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा भंग करने पर विवश नहीं कर सकते। मैं कभी भी सत्य को छोड़ या छिपा नहीं सकता।

जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने देशी राजाओं को जगाने का अभियान छेड़ा था। इसी क्रम में रावराजा तेज सिंह और कर्नल सर प्रतापसिंह के निमंत्रण पर जोधपुर जाने का निश्चय कर लिया। इस पर शाहपुराधीश को चिन्ता हुई। वे जानते थे कि जोधपुर के महाराज एक वैश्या नन्हीं जान पर बुरी तरह आसक्त हैं। शाहपुराधीश जानते थे कि स्वामी जी राजाओं के इस चारित्रिक दोष की भरपूर निन्दा करते हैं, कहीं ऐसा न हो कि वहाँ स्वामीजी को कोई हानि पहुंच जाए। उन्होंने स्वामीजी को निवेदन किया कि आप जोधपुर जा ही रहे हैं तो वहाँ वेश्याओं का अधिक खण्डन न कीजियेगा। स्वामीजी ने उत्तर दिया बड़े बड़े कंटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटा जाता। उसके लिए अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होती है। अजमेर में भी लोगों ने चेतावनी दी कि महाराज, वह मूल राक्षस का देश है वहाँ न जाईये। इस पर स्वामीजी ने इतना ही कहा- यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।

जोधपुर में ही एक षड्यंत्र के द्वारा २९ सितम्बर सन् १८८३ को उन्हें दूध में विष (संखिया) दे दिया गया। इसी के परिणामस्वरूप ३० अक्तूबर १८८३ को दीपावली के दिन अजमेर में वे नश्वर शरीर को त्यागकर मुक्ति पथ के पथिक बन गए।

सूर्य सोने को गया लाखों सितारों को जगाकर,
एक दीपक बुझ गया लाखों चरागों को जलाकर।।

अपने संस्थापक की जन्मतिथि को लेकर भ्रम का शिकार आर्यसमाज

इं.आदित्यमुनि वानप्रस्थ, भोपाल

हाल ही में एक आर्यपत्र के सम्पादक ने अपने पत्र के सम्पादकीय लेख में लिखा है कि ''महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म १२ फरवरी, १८२४ ई. को टंकारा गुजरात में हुआ था।'' उसका यह कथन सर्वथा भ्रामक है क्योंकि हमारे पास उपलब्ध २०० वर्षीय (१८०० से लेकर १९९९ ई. तक के) पुस्तकाकार पंचांग के अनुसार १२ फरवरी, १८२४ ई. को माघ शुक्ल १२-१३ की तिथि थी और उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र तथा संवत् १८८०विद्यमान था जो स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित रूप से बताए गए अपने जन्म संवत् १८८१ के ही विरुद्ध है।

ऋषि दयानन्द ने सबसे पहले ४ अगस्त, १८७५ ई. को पूना में पहुंचकर अपने पूर्व चरित्र के सम्बन्ध में वहां यह कहा था कि ''इस समय मेरी अवस्था ५० वर्ष की होगी।'' चूंकि ४ अगस्त,१८७५ई. (श्रावण शुक्ल ३, बुधवार) को ईस्वी सन् १८७५, चैत्रीय संवत् १९३२ और कार्तिकीय (गुजराती) संवत् १९३१ वि. वर्तमान था इसलिए इन वर्षों में से ऋषि की अवस्था के ५० वर्ष घटाने से ऋषि दयानन्द का जन्म सन् १८२५ ई, चैत्रीय संवत् १८८२ और कार्तिकीय (गुजराती) संवत् १८८१ विक्रमी में ही हुआ होना समझना चाहिए था, परन्तु ऋषि के जीवनी लेखकों- पं. लेखराम आर्यपथिक और बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय से संवत् १८८१ को चैत्रीय संवत् समझ लेने की और उसमें तथा ईस्वी सन् के प्रारम्भ में जो ५७ वर्षों का अन्तर रहता है उसे घटाकर १८८१-५७=१८२४ ई. में उनका जन्म होने की जो भूल आरम्भ में ही कर दी गई थी उसका शिकार होकर आर्यजन अभी भी उससे बाहर नहीं निकल पाए हैं। बाद में सार्वदेशिक सभा ने १९६७ ई. में सन् १८२५ ई. के लिए ऋषि का जो जन्म दिनांक १२ फरवरी (फाल्गुन कृष्ण १०, शनिवार) निर्धारित कर दिया था, उसकी कलम कुछ नासमझ आर्यो ने इससे एक वर्ष पूर्व के सन् १८२४ ई. में लगाकर एक सर्वथा ही काल्पनिक जन्मतिथि १२ फरवरी, १८२४ ई. भी प्रचलित कर दी जिसका शिकार पूर्वोक्त आर्यपत्र तथा उससे सम्बद्ध सभा के अधिकारी और आर्यजन तक हो गये हैं जिन्होंने १९९ वर्षों के बाद पड़ने वाली गत १२ फरवरी, २०२३ ई. की तिथि पर ही देश के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी तक को बुलाकर ऋषि दयानन्द की २००वीं जन्मजयन्ती का दिल्ली में एक भव्य समारोह कर डाला और आगे एक वर्ष तक २०० वर्षीय (१८२४-२०२४ ई. के आधार पर) चलने वाले विभिन्न आयोजनों की श्रंखला का शुभारम्भ कर दिया जिससे सारा आर्यजगत् भी भेंड़चाल का शिकार होकर आजकल यही सब कुछ करने में प्रवृत्त है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल आल्काट और मैडम ब्लेवटस्की के अनुरोध पर उनके मासिक पत्र 'द थियोसोफिस्ट' के लिए अपनी जो प्रारम्भिक आत्मकथा आर्यभाषा में छः पृष्ठों में अपने लेखक से अपने जन्मदिन (भाद्रपद शुक्ल ९) पर ही लिखाकर बरेली से २७ अगस्त, १८७९ ई. को अपने वेदभाष्य के मैनेजर मुंशी समर्थदान के माध्यम से मुम्बई प्रकाशनार्थ भेजी थी, उसका नामकरण उन्होंने किसी बालक का जन्म होने पर लिखाए जाने वाले जन्मपत्र के आधार पर ही जन्मचरित्र किया था। इसमें उन्होंने लिखा था कि ''संवत् १८८१ में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त, देश काठियावाड़ का मजोकठा देश, मोरवी का राज्य, औदीच्य ब्राह्मण के घर में हुआ था'' यही बात स्वामी दयानन्द के शिष्य पं. ज्वालादत्त शर्मा द्वारा रचित निम्न श्लोक में भी कुछ इस प्रकार कही गई है-

क्षेणीभाहीन्दुभिरहुते वैक्रमे वत्सरे यः, प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणे देशवर्ये।
मूलनासौ जननविषये शंकरेणापरेणः ख्यातिं प्रापत् प्रथमवयसि प्रीतिदां सज्जनानाम।

स्व. पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा पूना से ही १८७५ ई. में प्रकाशित मूल मराठी लेखों को प्राप्त कर आर्यभाषा में जो अनुवाद किया जाकर संवत् २०३९ वि. में प्रकाशित किया गया था उसमें पूना-प्रवचनों (उपदेश मंजरी) का ऋषि प्रोक्त उक्त वाक्य कुछ इस प्रकार छपा हुआ मिलता है कि '' इस समय मेरा वय ४९/५० वर्ष का होगा।'' जिससे ४ अगस्त,१८७५ ई. में से क्रमशः ५० और ४९ वर्ष घटाने पर ऋषि का जन्म ४ अगस्त,१८२५ ई. से लेकर ४ अगस्त, १८२६ ई. के मध्यवर्ती किसी दिनांक का ही हो सकता है। अतः ऐसे एक दिनांक २० सितम्बर, १८२५ ई. को ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारी परिवारीजनों से उनकी जन्मपत्री के रूप में आर्यसमाज टंकारा के भूतपूर्व मंत्री पं. श्रीकृष्ण शर्मा ने प्राप्त कर संवत् २०२० (सन् १९६४ ई.) के अपने एक प्रकाशन में प्रकाशित की थी जिसके अनुसार बालक मूलशंकर का जन्म भाद्रपद शुक्ल ९ कार्तिकी संवत् १८८१ को मूल नक्षत्र के चतुर्थ चरण और धनु राशि में २० सितम्बर, १८२५ ई. को ब्राह्ममुहूर्त में ३-३० बजे हुआ था। इस कारण सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा चैत्रीय संवत् १८८१ मानकर मान्य की गई ऋषि की जन्मतिथि फाल्गुन कृष्ण १० (१२ फरवरी, १८२५ ई., शनिवार) स्वतः ही गलत हो गई क्योंकि वह जन्मतिथि के लिए मान्य दोनों छोरों (४ अगस्त, १८२५ और १८२६ ई.) के बाहर की है और उसको मानने से ऋषि का वय ४ अगस्त, १८७५ ई. को ५० वर्ष, ५ माह और २३ दिन का हो जाता है जो ऋषि के पूना-प्रवचनों में कथित अपने वय सम्बन्धी कथन का अतिक्रमण करती है।

इन सबसे पूर्व स्वामी दयानन्द ने कलकत्ता (अब कोलकाता) में जाकर २२ से ३१ मार्च,१८७३ ई. के मध्य अपनी जो आत्म जीवनी वहां संस्कृत में बोलकर बंगला भाषा में लेखकों को लिखाई थी उसमें उन्होंने २२ मार्च, १८७३ ई. को कहा था कि '' मेरी अवस्था इस समय प्रायः ४८ वर्ष की है।'' क्योंकि २० सितम्बर, १८२५ ई. से लेकर २२ मार्च, १८७३ ई. तक ४७ वर्ष ६ मास और २ दिन ही होते हैं। यदि ऋषि का जन्म सार्वदेशिक सभा के निर्णयानुसार १२ फरवरी, १८२५ ई. को वस्तुतः हुआ होता तब तो वे यह कहते कि ''इस समय मैं ४८ वर्ष का हो चुका हूं।''

इसलिए ऋषि की प्राप्त जन्मकुंडली के अनुसार जो दो ज्योतिषियों से प्रमाणित है आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की वास्तविक जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल ९ कार्तिकी (गुजराती) संवत् १८८१ तदनुसार २० सितम्बर, १८२५ ई. मंगलवार ही है जैसी कि हमने अपने दयानन्द दिवाकर ग्रन्थ में लिखी हुई है।

ऋषि दयानन्द के मानस में उनकी यह जन्मतिथि सदैव अंकित रही है, इसीलिए उन्होंने अपने दो प्रमुख सैद्धान्तिक ग्रन्थों- सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की भूमिकाओं में भी अपने जन्म पक्ष के रूप में इसे इस प्रकार स्मरण किया है-

सत्यार्थ प्रकाश -
स्थान - महाराणाजी का उदयपुर
(स्वामी) दयानन्द सरस्वती
भाद्रपद शुक्ल पक्ष संवत् १९३९

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका -
कालारामांकचन्द्रे ब्दे भाद्रमासे सिते दले।
प्रतिपद्यादित्यवारे भाषष्यारम्भः कृतो मया।।

अर्थात् विक्रम के संवत् १९३३ के भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा , रविवार के दिन इस भाष्य का आरम्भ मैंने किया है।(सब सज्जन लोगों को विदित हो कि जिनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है उन्होंने इस वेदभाष्य को रचा है।)

मेरा निवेदन है कि आर्यसमाज पिछले १४८ वर्षों से ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि को लेकर की जा रही इस भूल का परिमार्जन करके उनकी २००वीं जन्म जयन्ती आगे २० सितम्बर, २०२४ ई. को मनाए और चैत्र शुक्ल पंचमी चैत्रीय संवत् २०८२ को आर्यसमाज स्थापना के १५० वर्ष पूर्ण होने का समारोह तथा ऋषि की द्वितीय जन्मशताब्दी और आगे भाद्रपद शुक्ल ९ कार्तिकी संवत् २०८१ (सितम्बर,२०२५ ई.) में आयोजित करें।

गुरुकुलीय शिक्षा का महत्व

आखिर किसी भी राष्ट्र के लिए उसके द्वारा अपनाई गई शिक्षा प्रणाली का क्या महत्व होता है और शिक्षा के क्षेत्र में कोई गलत निर्णय लिया जाए तो उसके क्या दूरगामी परिणाम होते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण हमारा-अपना देश भारत है जिसके नीति नियंताओं ने स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त शिक्षा नीति को अपनाने में एक बहुत बड़ी चूक कर दी और जिसका परिणाम हन आज भी देख रहे हैं और खमियाजा भुगत रहे हैं।

स्वाधीनता प्राप्ति के समय हमारे पास स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा पुनः जीवित की गई गुरुकुलों की भांति राजा और रंक सभी को संतान एक साथ अपने माता पिता के लाड़ प्यार से दूर गुरु के आधीन रहकर शिक्षा प्राप्ति करते थे और सही मायनों में वैदिक समाजवाद के दर्शन ऐसे गुरुकुलों में ही होते थे। गुरु ऐसे समस्त छात्रों को अपने आधीन धारण करते हुए वेदारम्भ संस्कार से प्रारम्भ कर शिक्षा देकर एक नया जन्म देता था। छात्र द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा के आधार पर उसके वर्ण का निर्धारण आचार्य द्वारा शिक्षा समापन के दीक्षांत समारोह में उनका वर्ण निर्धारित किया जाता था। यही समाज को जोड़ने वाली सच्ची वैदिक कर्मणा वर्ण व्यवस्था थी। आज कल अविद्या के कारण प्रचलित जन्मना वर्ण व्यवस्था तो केवल समाज को तोड़ती है। गुरुकुल में राजा रंक सभी संतान एक साथ गुरु के आधीन रहती थी तो सामाजिक समरसता का भाव बचपन में ही कूट कूट कर भरा जाता था। गुरु भी प्रत्येक छात्र की योग्यता देख कर उसकी योग्यता के अनुसार उसके आगामी जीवन के अनुकूल शिक्षा देकर उसे उसमें प्रवीण बना देता था। अर्थात अपनी शिक्षा की आगामी दिशा चुनने का पूर्ण अधिकार छात्र के पास उसके आचार्य के कुशल मार्गदर्शन में रहता था। आज की भाँति माता पिता अपनी अतृप्त इच्छा को पूर्ति बच्चों के माध्यम से करने का प्रयास नहीं कर पाते थे। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में छात्र पूरी तरह ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पूर्ण संयम के साथ रहते थे। आज की भाँति नहीं की को एजुकेशन में मैं तुझसे मिलने आईं ट्यूशन जाने के बहाने। आज जो समस्या समाज में वासना विपरीत लिंगों में आकर्षण को हो प्रेम समझने को हो गई है वह नहीं होती थी। गुरुकुल शिक्षा व्यवस्था में छात्र अपने आचार्य के प्रति पूर्णतया समर्पित होते थे और आचार्य गुरु की आज्ञा पालन करने में अपना सौभाग्य समझते थे। जैसे गयार्दा पुरुषोत्तम श्री राम ने अपने गुरु विश्वामित्र के आदेश पर यज्ञ की रक्षा के लिए राक्षसों से युद्ध किया। वर्तमान में देव दयानन्द ने अपने गुरु विरजानंद के आदेश पर पूरा जीवन सत्य सनातन वैदिक धर्म के लिए समर्पित कर दिया। आज तो अध्यापक भी केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु कैसे बच्चों को ट्यूशन पढ़ा कर कोचिंग की फीस ली जाए यही चिंता रखते हैं। बच्चे भी ट्यूशन पढ़ कर पेपर पहले मिलने की आशा करते हैं और टीचर क्लास में बी आई पी बनकर बदमाशी सोखते हैं। ट्यूशन जीवी अध्यापक को कोई रूचि छात्रों को संस्कार देने की होती। जबकि गुरुकुल में बच्चों में राष्ट्र प्रेम की भावना कूट कूट कर भर दी जाती थी। ब्रेन ड्रेन को समस्या और बच्चों का पढ़ाई पूरी करते ही क से कबूतर पढ़ कर कबूतर बन कर उड़ जाना इसी मैकाले की शिक्षा प्रणाली की देन है जो आज भी मैकाले के ब्रिटिश संसद में किए दावे के अनुरूप मानसिक गुलाम ही पैदा कर रही है। आज की मैकाले की शिक्षा में संस्कारों का कोई स्थान ना होने और संस्कार देने को भगवाकरण का नाम देने के कारण ही बच्चों का अपने माता पिता परिवार समाज राष्ट्र से जुड़ाव लगाव खत्म होता जा रहा है।

इस लिए गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली का महत्व समझते हुए हमें पुनः इसको तरफ लौटना होगा और बच्चों में माता पिता आचार्य के प्रति सम्मान, अपनी रूचि की शिक्षा में कुशलता, सबको समान अवसर का गुरुकुलीय समाजवाद, समाज राष्ट्र के प्रति प्रेम भाव, वैदिक कर्मणा वर्ण व्यवस्था से समाज को जोड़ना, राजा और रंक सभी के बच्चों के बिना भेद भाव एक साथ गुरुकुल में रहने से सामाजिक समरसता पुरातन सनातन वैदिक संस्कृति की जड़ों से जुड़े रहना, संस्कृति से जुड़े रह कर फलना फूलना आदि अनेकों लाभ गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था में उपलब्ध हैं।

आर्य मित्र
नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
....
....
....

संपूर्ण भारत में शराबबंदी लागू करने के लिए राष्ट्रव्यापी धरना

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शराबबंदी संयुक्त मोर्चा की बैठक दिनांक १५ अप्रैल २०२३ को प्राउट भवन, नई दिल्ली में संपन्न हुई।

बैठक में ३० जनवरी २०२४ को जंतर मंतर नई दिल्ली में लगभग १०००० महिलाओं की अगुवाई में धरना दिया जाएगा उससे पूर्व पूरे देश में शराबबंदी को लेकर जन जागरण पदयात्रा व बैठकें की जाएंगी। संयुक्त राष्ट्रीय शराबबंदी मोर्चा देश के समस्त लोगों का आवाहन इस मायने में शामिल होने के लिए करता है। दिनांक २ अक्टूबर २०२३ को केंद्रीय समिति का एक शिष्टमंडल भारत की राष्ट्रपति महामहिम द्रोपदी मुर्मु से भेंट कर पूरे देश में शराबबंदी हेतु एक ज्ञापन सौंपेगा।

इस अवसर पर श्री सुल्तान सिंह राष्ट्रीय संयोजक श्री निहाल सिंह चौहान राष्ट्रीय महासचिव, श्री सुरेंद्र रावत राय, राष्ट्रीय कोर कमेटी सदस्य, श्री गिरिजा नायरक-उड़ीसा, श्री तारक जी कोलकाता, श्री सवाई सिंह जयपुर राजस्थान, श्री शिवकुमार चेन्नई तमिलनाडु, श्री राजेंद्र सिंह अल्मोड़ा उत्तराखंड, श्री जगदीश सिंह कुशवाहा आगरा, श्री गिरिराज सिंह ढाकरे आगरा, श्री सोमनाथ सिंह गहलोत मेरठ, श्री मन्नत तिवारी दिल्ली, श्री बलजीत सिंह हरियाणा आदि उपस्थित थे। बैठक आचार्य संतोष आनंद गिरि के संरक्षण में संपन्न हुई।

'आर्य समाज एक धार्मिक पवित्र स्थल' इसे नाबालिगों की शादी का अड्डा ना बनाएँ

(महर्षि के त्याग, तप व बलिदान को अपने क्षुद्र स्वार्थ व धन के लिए धूल धूसरित न करें)

उच्च न्यायालय प्रयागराज (इलाहाबाद) ने अभी हाल में ही अपने एक फैसले में महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज मंदिर को एक धार्मिक पवित्र स्थल मानते हुए उसे नाबालिगों की शादी का अड्डा बनाए जाने पर गंभीर चिंता व्यक्त की है। न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी जी ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि हनुमान रोड, नई दिल्ली के अध्यक्ष को सर्वोच्च न्यायालय के सुझाव को ध्यान में रखकर गाइडलाइन तैयार कर आठ हफ्तों में दाखिल करने का निर्देश दिया है।

सारा विश्व जब महर्षि दयानंद की २००वीं जयंती मना रहा है। महर्षि के तप, त्याग, बलिदान व विद्वता आदि का लोग गुणगान कर रहे हैं। तब कुछ क्षूद्र स्वार्थी व तथाकथित आर्य समाजी उनकी छवि को धूल धूसरित करने का प्रयास कर रहे हैं। अब समय आ गया है कि ऐसे लोगों को कठोर नियम बनाकर उनका पालन करने के लिए बाध्यता आवश्यक होनी चाहिए अन्यथा की स्थिति में निष्कासन ही एक मात्र उपाय हो।

देश को स्वामी दयानंद मिल गये

-अनुराग आर्य

देश को स्वामी दयानन्द मिल गये ।
पुष्प वैदिक वाटिका के खिल गये ।

१- चल दिये सुख सम्पदा को छोड़कर ।
सत्य वक्ताओं में शामिल हो गये ।।

२ - तर्क की तलवार जब ली हाथ में
मिथ्या मत पन्थों के शासन हिल गये ।।

३- श्रद्धानन्द निर्भीक त्यागी हंसराज
देश पर मिटने को बिस्मिल मिल गये ।।

४- विष पिया अमृत पिलाया औरों को ।
प्यारे ऋषिवर पार कर मंजिल गये ।।
अथवा
प्यारे ऋषिवर छोड़ हमको चल दिये ।।

५- जहर दे करके किया था स्वागत तेरा ।
जीत करके हार किसी का दिल गये ।।

६- रक्त से सींची यह प्यारी वाटिका ।
आर्यों की सेना सजाकर चल दिये ।
देश को स्वामी दयानन्द मिल गये ।
पुष्प वैदिक वाटिका के खिल गये ।।

ऋषि दयानन्द के बालसखा का एक वक्तव्य

ऋषि दयानन्द जन्मग्राम टंकारा में आयोजित "ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव" का पांचवा दिन... दिनांक ११ फरवरी १९२६ (बृहस्पतिवार) का मध्याह्नोपरांत का समय... जनता ऋषि दयानन्द के निकट सम्बन्धियों तथा प्रत्यक्षदर्शियों के दर्शनों के लिए बडी उत्सुकता से प्रतिक्षा कर रही है... सम्पूर्ण पण्डाल खचाखच भरा हुआ है... इतने में एक अत्यन्त वृद्ध किसान शनैः शनैः लकडी टेकता हुआ स्टेज पर आकर उपस्थित होता है... उस समय उसकी आयु १०३ साल है... ऋषि के इस बाल्य सखा को इस तरह अचानक अपने सामने खडा देखकर सभा-मण्डप में सर्वत्र सन्नाटा छा जाता है... सारी सभा इस जीर्ण-शीर्ण परंतु अमित भाग्यशाली व्यक्ति को अपने विस्फारित नेत्रों से निहारने लगती है... उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उस वृद्ध व्यक्ति के साथ ऋषि दयानन्द भी इस मण्डप में उपस्थित है... देर तक पण्डाल में सन्नाटा खिंचा रहता है... अंत में इस गम्भीरता को छिन्न-भिन्न करते हुए वह स्थविर अत्यन्त कम्पमान स्वर में कहना प्रारम्भ करता है... बालक मूलशंकर के साथ खेलकूद में बीतें हुए बचपन के उन सुखी दिनों का स्मरण कर उसका रोम-रोम रोमान्चित हो जाता है और उसके नेत्रों से आनन्द की अविरल अश्रुधाराएं बहने लगती है... ऋषि दयानन्द के टंकारा निवासी उस बाल-सखा इब्राहीम ने कहाः

जिन्हें आप लोग ऋषि दयानन्द कहते है तथा आज समग्र भारतवर्ष ही नहीं प्रत्युत सारा संसार जिनकी विद्वता और महत्ता पर मुग्ध है, उन भगवान् के साथ मैं इसी टंकारा ग्राम की भूमि में, इसी डेमी नदी के रेतीले मैदानों पर, इन्हीं खेतों के अन्दर, इन्हीं वनमालाओं में कई साल तक बचपन में खेलता रहा हूँ। मुझे आज भी उनकी वह बचपन की मुग्ध सूरत स्मरण है। उनकी आंखों में मुग्धता औए तेज, उनके शरीर में सौन्दर्य और बल, उनके चेहरे पर सरलता और आग्रह, उनकी वाणी में मृदुता और ओज कूट-कूट कर भरा हुआ था। कितनी ही बार इसी ही स्थान पर जहां आज यह पण्डाल सुशोभित है, मैंने उनके साथ बाल्य क्रिड़ाएं की थी। कितनी ही बार इसी डेमी नदी की धारा में मैं और वे हंसते-खेलते तैरे है। कितनी ही बार उनके बाल्य शरीर के साथ मैंने कुश्ती और मारपीट की है। यद्यपि मूलशंकर आयु में मुझ से दो साल छोटे थे तथापि उनके गौर शरीर में बडा बल था। वे अकेले ही मुझे और मेरे साथियों को बाल्य-संग्राम में पराजित कर दिया करते थे। सच पूछिये तो मूलजी बडे उपद्रवी और हठी थे। परन्तु निर्बलों के साथ उनकी बडी सहानुभूति रहती थी। उनके पिताजी का नाम करसनजी त्रिवेदी था। करीब २३ साल की उम्र में हमने सुना था कि वह अपनी सारी सम्पत्ति को ठुकरा कर घर से भाग गया था और कहीं जाकर संन्यासी हो गया है। उनके पिताजी ने उनकी बडी खोज की थी। घर छोड देने के बाद मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। मेरी बडी इच्छा थी कि मैं उनके फिर भी दर्शन करता, परन्तु उसके बाद वे कभी इस ग्राम में लौटे नहीं और मेरी ख्वाहिश अधूरी ही रह गई!"

◆ स्त्रोतः "ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी" (चतुर्थ परिशिष्ट का अंश - पृ. १४६-१४७)

लेखकः दयाल मुनि आर्य

स्वामी—आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक—पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5—मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है—सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।